मनोविज्ञान

संरक्षक—डा० सम्पूर्णानन्द

वर्ष ७] उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्यवरान्निबोधत् अंक ३]

अध्यात्मिक स्वतंत्रता।

हम कभी २ कल्पना करते हैं कि अपने सम्बन्धियों के भारसे मुक्त व्यक्तिही सच्ची स्वतंत्रता को प्राप्त करता है। परन्तु यह मिथ्या विचार है। सच्ची स्वतंत्रता का अनुभव पारस्परिक निर्भरता में हीं प्राप्त होता है। जब मनुष्य असभ्य और बर्बर होता है तबव्यक्तिवाद को प्रधानता देता है। असभ्य व्यक्तिको सच्ची स्वतंत्रता नहीं मिलती। उन्हीं लोगों को सच्ची स्वतंत्रता रहती है, जिनमें आपस के विचारों के आदान प्रदान और सहयोग की क्षमता रहती है। स्वतंत्रता के विकास का इतिहास मानवी सम्बन्धों के विकास का इतिहास है—

रविन्द्रनाथ टैगोर (रिलीजन आफ मैन)

मार्च
१९५८

वार्षिक चन्दा ४)

संपादक—प्रो० लालजीराम शुक्ल
काशी मनोविज्ञानशाला

दिवाकर मिश्र, घर - कैवटलिया - डा - अमनौर
जि॰ - सारण।

बिगड़े बालक का सुधार कैसे किया जाय ?

आज से कुछ दिन पूर्व हमारे एक मित्र बड़ी परेशानी की अवस्था में हमारे पास आये। उनकी परेशानी का कारण उनको बड़े लड़के का व्यवहार था। यह लड़का स्थानीय स्कूल की आठवीं कक्षा में पढ़ता था। वह इस समय अपनी पढ़ाई से बिलकुल उदासीन हो गया था। वह बुरे लड़कों की संगत करने लग गया था। उनके साथ वह घूमता-फिरता और सिनेमा को जाता था। वह सिगरेट भी पीता था। इसके लिये वह पैसा पिता-माता से नहीं पाता था। अतएव किसी-न-किसी प्रकार घर से चोरी कर लेता था। इसके लिये उसके पिता ने उसे बहुत कुछ मारा-पीटा परन्तु उनमें सुधार नहीं हुआ। उसका आचरण और भी जटिल होता ही गया। पिता लड़के को हमारे पास लाये कि हम उसे सुधार दें। इसके कारण उसका ११ वर्षीय छोटा भाई भी बिगड़ रहा था।

आज से चार वर्ष पूर्व भी विश्वविद्यालय की एम॰ ए॰ कक्षा का एक छात्र अपने तेरह वर्षीय भाई को पैर में बेड़ी डाले हुए लाया। उसके वृद्ध पिता भी उसके साथ थे। लड़के की अनेक प्रकार की बुरी आदतों की चर्चा की गई। उसमें बुरे लड़कों की संगत करना और सिनेमा देखने की आदत लगी हुई थी। पिता बड़े ही आदर्शवादी व्यक्ति हैं, अतएव इन बातों से उन्हें बड़ी परेशानी हुई। उन्होंने लड़के को बहुत-कुछ समझाया परन्तु इससे कोई लाभ न हुआ। फिर उसे खूब मारा-पीटा। इससे उसने घर से भागने की आदत डाल ली। वह बिना टिकट रेल पर चढ़ जाता और किसी दूर के शहर में किसी दूकानदार के यहाँ नौकरी करके अपनी आजीवका कमाता था। वह कभी-कभी अपने छोटे भाई को भी अपने साथ भगा ले जाता था। एक बार दोनों भाई बिना टिकट के बम्बई कलकत्ता मेल से चल दिये। बीच में इटारसी के पास बड़ा भाई कुछ खाना खरीदने के लिये उतरा और रेल छूट गई। छोटा भाई रेल में ही रह गया। अगली स्टेशन पर वह उतर गया। इधर बड़े भाई ने दूसरी गाड़ी आगे जाने को पकड़ी और अनायास छोटे भाई को स्टेशन पर पा लिया। इस प्रकार दोनों भाई मिल गये। परन्तु दोनों के छूट जाने की भी संभावना थी।

पिता को इन सब बातों को जानकर बड़ा ही दुःख होता था। वे बड़े लड़के को जितना ही पीटते उसकी घर से भागने की इच्छा उतनी ही बलवती होती जाती थी। वह घर से कई बार भाग चुका था। किसी ने सलाह दी

कि कुछ दिनों तक उस लड़के को बेड़ी डालकर रखा जाय, तो उसकी इस प्रकार की आदत चली जायगी। हमें बताया गया कि उसके एक मित्र की घर से भागने की आदत इसी प्रकार छूट गई है।

एक तीसरे मित्र भी अपने चौदह वर्ष के बालक की अनेक प्रकार की बुरी आदतों से परेशान हैं। वह सिगरेट पीता, सिनेमा जाता, बुरे लड़कों की संगत करता, चोरी करता और जिस काम से उसे रोका जाता उसी काम को छिपकर करता है। मित्र ने लिखा कि उसमें और भी अनेक बुरी आदतें आ गई हैं और उसका जीवन बड़ा दूषित हो गया है। संभवतः उसमें काम-कुटेवें भी लग गई हों। मित्र बड़े ही आदर्शवादी दृढ़व्रती व्यक्ति हैं और उन्होंने बालक को सुधारने की अनेक प्रकार का यत्न किया—बालक को समझाया - बुझाया, उसे मारा-पीटा, परन्तु उसमें कोई सुधार नहीं हुआ। अतएव उन्होंने मनोवैज्ञानिक परामर्श हम से लिया। अतएव हमारा यह कर्तव्य होता है कि उक्त प्रकार के सभी बालकों के सुधार के लिये हम कुछ मनोवैज्ञानिक परामर्श समान्य जनता को दें। हम सभी को थोड़े न थोड़े रूप में ऐसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अतंएव इस विषय पर थोड़ा भी विचार करना लाभदायक होगा।

इस प्रकार के बालकों के मनोवैज्ञानिक उपचार के लिये यह आवश्यक है कि हम उन कारणों को जाने, जो बालक को विशेष प्रकार का दुराचारी बनाते हैं। किसी दुराचारी बालक को किसी शैतानी शक्ति के वशीभूत मानकर उसे मार-पीटकर ठीक करने की चेष्टा करना सर्वथा अ-मनोवैज्ञानिक है। इससे बालक की मानसिक जटिलता और भी बढ़ जाती है। वह अपराधी के बदले कभी-कभी मानसिक रोगी बन जाता है। बलात् भला बन गया बालक निकम्मा युवक बनता है। कभी-कभी ऐसे व्यक्ति को स्थायी सिर की पीड़ा, आँख का रोग, बहरापन, क्षय, हृदय का रोग अथवा पेट का रोग हो जाता है। इस प्रकार के कई रोगियों की चिकित्सा करने का अवसर हमें पड़ा है। कठोर वातावरण में रखे गये बालक मस्तिष्क के रोगी भी बन जाते हैं।

बालक के उद्दण्ड होने का प्रधान कारण बचपन का स्नेह-हीन वातावरण होता है। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार उद्दण्डता तथा अपराध उसी प्रकार मानसिक रोग हैं, जिस प्रकार अकारण भय, चिन्ता, हिस्टीरिया, बाध्य-विचार आदि मानसिक रोग है। ये रोग कभी-कभी शारीरिक रोग का भीं रूप धारण कर लेते हैं। मानसिक रोग और अपराध की मनोवृत्ति एक दूसरे में परिवर्तित भी हो जाते हैं। हमारा एक रोगी पहले हृदय के रोग तथा अकारण भय और चिन्ता से पीड़ित था। वह एक समय अपने बिस्तर से भी उठ नहीं सकता था।

उसको भय हो गया था कि वह अब बिलकुल निकम्मा हो चुका है। इनका कारण उसके मन में अपनी काम-चेष्टा के प्रति पाप की दमित भावना थी। वह हस्तमैथुन करने का आदी बन गया था। पीछे उसे ज्ञात हुआ कि इस क्रिया को करनेवाला व्यक्ति अपनी सभी मानसिक और शारीरिक शक्तियों को खो देता है। इन बातों ने उसके मन में भारी भय के भाव उत्पन्न किये। ये भाव भी उसके अचेतन मन में घर कर गये। फिर अपनी भयानक कल्पनाओं के अनुसार उसकी शारीरिक क्रियायें भी होने लगी। पहले तो उसने अपनी स्मरण-शक्ति को खोया। वह पढ़ाई में फेल होने लगा, पीछे उसकी चित्त की एकाग्रता जाती रही। फिर उसका सभी प्रकार का आत्मविश्वास जाता रहा। वह शरीर से रोगी रहने लगा। जैसे-जैसे उसकी चिकित्सा होती गई तैसे-तैसे उसका रोग बढ़ता ही गया। एक समय वह बिस्तर पर से उठने योग्य ही न रह गया।

उक्त रोगी की मनोवैज्ञानिक चिकित्सा जब की गई, तो वह शरीर से पूर्ण स्वस्थ हो गया, परन्तु अब उसके मन में अपने बड़े भाई और माता-पिता के प्रति प्रबल द्वेष-भावना जाग्रत हो गई। वास्तव में इस व्यक्ति ने अपने पिता से वैसा स्नेह नहीं पाया था, जैसा उसके दूसरे भाइयों ने पाया था और इसके कारण उसके मन में अपने सभी सम्बन्धियों के प्रति बचपन से ही द्वेषभाव दमित अवस्था में थे। इन्हीं के कारण उसे हस्तमैथुन की आदत लगी थी और इसके भय के कारण उसे शारीरिक रोग उत्पन्न हुआ था। जब शारीरिक रोग जाता रहा और उसके जीवन में निराशा की जगह आशा के भाव जाग्रत हुए, तो उसके साथ-साथ अपने सम्बन्धियों के प्रति द्वेष-भाव भी म्रियमाण हो गये। यह व्यक्ति अब वयस्क युवक हो चुका था। अतएव उसका आचरण सारे परिवार के लिये भारी समस्या बन गया।

अपराधी बालक अपने अनजाने ही अपने प्रति किये गये अत्याचार का बदला अपने माता-पिता, बड़े भाई, अन्य सम्बन्धियों तथा पूरे समाज से लेता है। वह इस तरह उन लोगों को परेशान किये रहता है। यह भी प्यार प्राप्ति का विकृत मार्ग है। अपराधी बालक अपने माता-पिता को दुःखी बनाता है। वे उसे भुला नहीं सकते। वह कुछ-न-कुछ समस्यायें उनके सामने उपस्थित किये ही रहता है। जब ऐसे बालक को दण्ड के द्वारा सुधारने की चेष्टा की जाती है, तो उसका मानसिक विचार और भी बढ़ जाता है। फिर दण्ड पाना ही बालक का एकमात्र लक्ष्य बन जाता है। विकृत मनोवृत्ति का बालक माता-पिता का दण्ड पाने के लिये ही अमल में कोई अनुचित बात करते रहता है।

अपराधी अथवा उदण्ड बालक के जीवन का अध्ययन करने से पता चलता है कि स्नेह-हीनता के साथ-साथ उसकी प्रबल मूल-प्रवृत्तियों का कठोरता से दमन हुआ है। ऐसे बहुत से बालकों में आत्म-प्रकाशन को तथा काम-प्रवृति का दमन पाया जाता है। जिस बालक की आत्म-प्रकाशन की प्रवृत्ति दमित होती है, वह दूसरे बालकों के प्रति ईर्ष्या का भाव मन में रखता है। उसके मन में आत्म-हीनता की भावना रहती है। यह आत्म-हीनता की भावना बालक को ऐसे काम करने की प्रेरणा देती है, जिससे वह अपने को दूसरों से अधिक बली समझ सके। इसके कारण वह दूसरे बालकों को मारता-पीटता और उनकी वस्तुयें चुरा लेता है। विकृत काम-प्रवृत्ति के दमन के कारण भी बहुत से बालकों में उदण्डता की मनोवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। इसके कारण कितने ही बालकों को चोरी की आदत लग जाती है।

ऐसे बालकों के सुधार के लिये पहली आवश्यकता बालक को सच्चा स्नेह देना है। प्रत्येक सुधारक को चाहिये कि वह बालक के हृदय की बात को जानने की चेष्टा करे। उद्दण्ड बालक के मन में भी कहीं-न-कहीं भलाई बैठी रहती है। वह प्रेम का भूखा रहता है। वह एक प्रकार का मानसिक रोगी है और जिस प्रकार प्रत्येक मानसिक रोगी किसी ऐसे व्यक्ति की हार्दिक खोज में रहता है, जो उसके मन की बात को सुने उसी प्रकार प्रत्येक उद्दण्ड बालक भी सहानुभूति से सुननेवाले व्यक्ति की खोज में रहता है। अपराधी बालक के मन में यह विश्वास ही नहीं होता कि कोई भी व्यक्ति उससे सहानुभूति दिखा सकता है। यदि ऐसा व्यक्ति उसे मिल जाय, तो उसका जीवन ही परिवर्तित हो जावे।

प्रत्येक अपराधी व्यक्ति में उसी प्रकार आत्म-विश्वास का अभाव रहता है, जिस प्रकार मानसिक रोगी में आत्म-विश्वास का अभाव रहता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको भला सिद्ध करने की चेष्टा करता है। सभी व्यक्तियों में भले बनने की प्रवृत्ति होती है। इस प्रवृत्ति के कारण ही हम बुरे से बुरे व्यक्ति का सुधार कर सकते हैं। अतएव जितना ही अधिक हम किसी व्यक्ति का अपने आपकी भलाई कर सकने की योग्यता में विश्वास बढ़ाते हैं, उतना ही हम उसे भलाई की ओर ले जाते हैं। यदि किसी बालक में कोई कमजोरी है, तो उसका ढिंढोरा पीटना उसे बिगाड़ने का सबसे बड़ा साधन होता है। जो व्यक्ति बदनाम हो चुका है, उसका सुधरना कठिन होता है। अतएव किसी भी व्यक्ति के सुधारने का पहला कदम यह है कि उसके प्रति स्नेह दिखाकर उसकी भलाइयों के प्रति उसकी दृष्टि ले जाया जाता है। इस प्रकार उसका आत्म-विश्वास बढ़ता है।

जो व्यक्ति अपराधी बालक को उसका अपराध जानते हुए भी प्यार करता है, वह बालक का स्नेह-पात्र बन जाता है। फिर वह उस पर विश्वास करने लगता है। फिर यह दूसरे में किया गया विश्वास अपराधी बालक का आत्म-विश्वास बन जाता है।

जो व्यक्ति दूसरों की भलाई में विश्वास करता है, वही अपनी भलाई कर सकने की योग्यता में विश्वास करता है। ऐसे व्यक्ति की इच्छाशक्ति बलवती होती है। उसकी कल्पना रचनात्मक होती है। दूसरे के प्रति किये गये प्रेम से उसमें विश्वास उत्पन्न होता है। यह विश्वास आत्मविश्वास बन जाता है। यही आत्मविश्वास परमात्मा में विश्वास बनता है। इससे मनुष्य की कल्पनायें आशावादी अथवा रचनात्मक हो जाती हैं। इससे इच्छाशक्ति का बल बढ़ता है। आशावादी कल्पना का जब इच्छाशक्ति से संयोग होता है, तो मनुष्य अनेक प्रकार के लोक-कल्याण के कार्य करता है। उसमें अनेक सद्गुणों का प्रादुर्भाव होता है, जिससे उसके चरित्र का नवनिर्माण हो जाता है।

मनोवैज्ञानिकों ने अपराधी बालक के सुधार के लिये वे ही उपाय बतलाये हैं, जो मानसिक रोगी के उपचार के लिए बताये हैं। स्नेह का भाव उनमें प्रथम है। दूसरा उपाय बालक का मनोविश्लेषण है। इसके लिये कोई भारी ट्रेनिंग की आवश्यकता नहीं। इसके लिये केवल इतना ही आवश्यक है कि हम किसी भी हालत में बालक के प्रति निराशावादी न बने। उसके मन की हर एक बात को धैर्यपूर्वक सुने, उसे अपने आपको खोलने का पूरा अवसर दें, और उसे निराशावादी न बनने दें। जैसे-जैसे बालक अपनी पुराने दुःख की गाथा सुनाता है तैसे-तैसे उसके दमित भावों का रेचन होता है। फिर उसमें अपने आपको सम्हालने की शक्ति आ जाती है।

अपने मन को खोलने की प्रणाली को ही मनोविश्लेषण कहा जाता है। मनोविश्लेषण स्नेहके वातावरण में सरल हो जाता है। स्नेह के वातावरण में व्यक्ति को मानसिक शिलिथीकरण अपने आप ही हो जाता है। ऐसे ही वातावरण में मनुष्य अनायास उन बातों को कह डालता है, जो अन्यथा वह नहीं कहेगा। साधारणतः मनुष्य अपने विचार प्रकाशन के विषय में सतर्क रहता है। यह सतर्कता मूर्छा में, बीमारी में, स्वप्न में और स्नेह की अवस्था में कम हो जाती है। मनोविश्लेषण में इन सभी अवस्थाओं के भावों को जाना जाता है। इस प्रकार के भाव प्रकाशित करने से मानसिक खिंचाव अपने आप ही कम हो जाता है। अपराधी बालक को सुधारने का यह उपाय डा० विलियम ब्राउन ने बड़ा ही सफल पाया है। इसके लिये बीस से लेकर तीस घंटे देने पड़ते हैं।

अपराधी बालक को सुधारने का दूसरा उपाय निर्देश-विधि का उपयोग है। इसके लिये बालक को बिस्तर पर लिटा देना चाहिये और उसे अपने अङ्गों को शिथिल करने का उसी प्रकार का निर्देश देना चाहिये जिस प्रकार का निर्देश व्यक्ति को संमोहन करते समय दिया जाता है। उसे आराम से आँख मूँदकर धीरे-धीरे साँस लेने के लिये कहा जाना चाहिये। इतना करने पर अंगों की शिथिलता आ जाती है। फिर जब वह सोने की अवस्था में हो जावे, तो उससे कहना चाहिये कि उसकी इच्छा-शक्ति बलवान हो रही है और वह प्रतिभावान बन रहा है। यह याद रहे कि किसी भी मानसिक कमजोरी का इस समय नाम न लिया जाय। निर्देश नकारात्मक नहीं होना चाहिये। ऐसे व्यक्तियों में चित्त की एकाग्रता की कमी होती है और उनकी स्मरण-शक्ति कमजोर होती है। प्रतिदिन की निर्देश-चिकित्सा से इन शक्तियों में सुधार हो जाता है और फिर इस सुधार के कारण मनुष्य का आत्म-विश्वास बढ़ जाता जाता है।* फिर वह अपना सुधार सहज में ही कर लेता है।

इस प्रसंग में विलियम ब्राऊन की निम्नलिखित सलाह ध्यान में रखने योग्य है—

Suggestion treatment is an appeal to the unconscious mind, & an aid to the development of the will power, and is often beneficial in cases of persistent wrong doing when not prematurerly applied. The person to be healed should be down on a couch, be told to think of sleep and healed by suggestion to relax–as with the initial stages, already dealt with else where, with hypnotism–and then give suggestion that not only will his temptations leave him but the desire to make good will increasing by grow powerful It will be found that feebleness of concentration and weakness of memory are generally present in these patients. They are living on a low level on the emotional side and their intellectual sluggishness corresponds to it...And therefore re-education must include stimulation of their emotional, ethical and intellectual powers, particularly in the direction of extravresion.

डाक्टर विलियम ब्राऊन ने निर्देश चिकित्सा-विधि को अपराधी बालकों के सुधार में बड़ा ही उपयोगी पाया है। आधुनिक काल के कुछ मनोवैज्ञानिक निर्देश चिकित्सा-विधि के स्थायी लाभ पहुँचाने की उपयोगिता में विश्वास नहीं करते। वे न तो इसे मानसिक रोगों की चिकित्सा में उपयोगी मानते हैं और न अपराधियों के सुधार में। परन्तु डाक्टर ब्राऊन इसे दोनों कार्यों के लिये उपयोगी मानते हैं। यह अवश्य ध्यान में रखना होगा कि निर्देश चिकित्सा के पूर्व रोगी का अथवा अपराधी व्यक्ति का मनोविश्लेषण होना भी नितांत आवश्यक है। मनोविश्लेषण से जब ऐसे व्यक्ति के दमित भावों का रेचन हो जाता है और चिकित्सक और अपराधी (तथा रोगी) के बीच की दीवार हट जाती है तभी निर्देश चिकित्सा-विधि अपना काम ठीक से करती है।

निर्देश चिकित्सा वास्तव में मनुष्य के गहरे सत्व को क्रियमाण करती है। वह उसके अचेतन मन में उपस्थित अपार शक्ति को जगा देती है और इसी से रोगी का कल्याण हो जाता है। इस प्रसंग में भी डा० ब्राऊन के निम्नलिखित विचार ध्यान देने योग्य हैं।

In cases of juenile delinquency suggestion treatment succeeds because it is aimed at the unconscious level of the mind. and also possibly because when the patient is relaxed and self-forgetful he may be in closer touch with the spiritual universe. Psychotherapy should be spiritual as well as mental reclamation; the individnal must be born again, achive a new view point, and a stranger will. An act of will to be complete, must carry with it the imagination of success. And with no one more than the young offender it is so neeessary that there should be a spiritual rebirth.

मनोविश्लेषण और निर्देश के उपयोग के अतिरिक्त बालक को रचनात्मक कार्य में लगाये रखना नितांत आवश्यक है। रचनात्मक कार्य में लगे रहने से मनुष्य का उपयोगी कार्य कर सकने में आत्मविश्वास बढ़ता है। जैसे-जैसे यह आत्म-विश्वास बढ़ता है तैसे-तैसे अपराधी बालक अपने आप सुधरने लगता है। उदण्डता और अपराध ध्वंसात्मक मानसिक प्रवृतियाँ हैं। ये रचनात्मक प्रवृत्तियों के अभाव में बढ़ जाती है। जब रचनात्मक रूप से बालक की मानसिक शक्ति प्रकाशित होने लगती है, तो ध्वंसात्मक प्रवृत्तियाँ अपने आप कम हो जाती हैं।

हमारे मन की अलौकिक शक्तियाँ

मनुष्य की शक्तियाँ दो प्रकार की होती हैं। एक साधारण अथवा लौकिक दूसरी, असाधारण अथवा अलौकिक। मनुष्य अभ्यास के द्वारा इन दोनों प्रकार की शक्तियों को बढ़ा सकता है। मनुष्य की साधारण शक्तियाँ चित्त की एकाग्रता, धारण-शक्ति की प्रवीणता, स्मरण की तीव्रता, बुद्धि की प्रखरता और इच्छा-शक्ति की दृढ़ता है, इन सभी शक्तियों के बढ़ाने के लिये मनुष्य को दो प्रकार के अभ्यास करने पड़ते हैं,—एक जानबूझकर इन शक्तियों का व्यायाम करना और दूसरे शरीर और मन की शैथिलीकरण की अवस्था में इन शक्तियों के बढ़ने के लिये आत्मनिर्देश देना। प्रथम प्रकार का अभ्यास हमारे विद्यालयों के द्वारा कराया जाता है दूसरे प्रकार के अभ्यास के लिये कुशल मनोवैज्ञानिक की देखरेख, उसकी सलाह, उसके पथप्रदर्शन की आवश्यकता होती है। अपने चेतन मन की शक्तियों को बढ़ाना अर्थात् साधारण मानसिक शक्तियों को अधिक-से-अधिक विकसित करना प्रत्येक मानव का कर्तव्य है। हर एक सुंदर शिक्षा-प्रणाली का यही उद्देश्य होता है।

जहाँ तक अलौकिक अथवा असाधारण मानसिक शक्तियों की बात है, इन्हें प्राप्त करने की चेष्टा करना खतरे से खाली नहीं। अलौकिक शक्तियाँ वे हैं, जिन्हें प्राप्त करके हम कुछ ऐसी बातें कर सकते हैं जिन्हें भौतिक विज्ञान की प्रणाली से समझाया नहीं जा सकता। मनुष्य के मन में ऐसी शक्तियाँ हैं इसमें किसी भी गम्भीर चिंतन करनेवाले व्यक्ति को सन्देह नहीं है। उदाहरणार्थ मनुष्य अपने मन में ऐसी शक्ति को विकसित कर सकता है कि उसकी आँख पर पट्टी बँधी हो और वह किसी गाँव के सभी गली कूचों में घूम जाय। आज से २० वर्ष पूर्व लेखक के एक छात्र ने कालेज की विदाई के समय ऐसा ही एक चमत्कार दिखाया था। उसकी आँखपर पट्टी बाँध दी गई थी। फिर उसके पीछे १० फुट दूरी पर रखे हुए एक श्यामपट पर कालेज के प्रिंसिपल ने कुछ वाक्य अंग्रेजी में लिखे। इन वाक्यों को इस विद्यार्थी ने ठीक जैसे का तैसा बता दिया। यहाँ इस विद्यार्थी की अलौकिक शक्ति के विषय में कोई सन्देह का स्थान ही नहीं था। यह विद्यार्थी लेखक का भली-प्रकार से जाना-पहचाना व्यक्ति था, और उसी के द्वारा वर्ष भर तक पढ़ाया गया था। उसकी आँख पर पट्टी कालेज के ही एक अध्यापक ने बाँधी थी। श्यामपट उसके मुँह की ओर न रहकर पीठ की ओर था और उस पर लिखा गया वाक्य उसके किसी साथी के द्वारा

लिखा न होकर कालेज के प्रिंसिपल के द्वारा लिखा गया था। वाक्य भी ऐसा नहीं था, जिसके विषय में वह विद्यार्थी अन्दाज लगा सके। वाक्य के पढ़ने में उसने एक भी शब्द की गलती नहीं की। जब विद्यार्थी लेखक से बिदाई ले रहा था, तब उसने इस अलौकिक शक्ति के रहस्य के बारे में पूछा तो विद्यर्थी ने यही कहा कि 'चित्त की एकाग्रता के अभ्यास से मनुष्य को दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क में चलनेवाले विचारों का पता चल जाता है।' उसने आगे यह भी कहा कि 'आंपको चित्त की एकाग्रता का अभ्यास बहुत अच्छा है। अतएव शीघ्र ही आप इस शक्ति को प्राप्त कर सकते हैं।'

जिस प्रकार दूँसरे व्यक्ति के मन में चलनेवाले विचारों को हम अपने अलौकिक प्रयास से जान सकते हैं, उसी प्रकार भविष्य में होनेवाली घटनाओं की रूपरेखा भी हमें ज्ञात हो सकती है। इस प्रसंग में काशी मनोविज्ञानशाला में हिन्दू स्कूल के भूतपूर्व हेडमास्टर डा० ओटो उल्फ द्वारा दिया गया भाषण, जो मनोविज्ञान के मार्च १९५२ के अंक में प्रकाशित हुआ है उल्लेखनीय है। 'भविष्य में होनेवाली घटनाओं का चित्र कभी-कभी मनुष्य के मन में उसकी जागृत अथवा स्वप्नावस्था में उसी प्रकार आ जाता है, जिस प्रकार वे बाद को घटित होती हैं। जिन लोगों से हमारा विशेष स्नेह होता है उनके जीवन में यदि कोई दुर्घटना होनेवाली है, तो उसका चित्र हमारे अचेतन मन में आ जाता है। यदि किसी व्यक्ति का मन निर्मल है, तो यह घटना दिवास्वप्न में चित्रित हो जाती है।' मेरी माता के जीवन में होनेवाले इस प्रकार के दो एक अनुभव उल्लेखनीय हैं। एक बार मेरी माँ ने देखा कि एक नवयुवक जो उस समय फौज में काम कर रहा था, एक इञ्जन के पास असावधानी की अवस्था में खड़ा हुआ है, इसी बीच इञ्जिन फट पड़ा और नवयुवक को बहुत चोट लगी। मेरी माँ इस नवयुवक को स्नेह की दृष्टि से देखती थी। उसने तुरन्त ही उस युवक को बुलाया और अपना स्वप्न सुनाकर उसे भावी दुर्घना के विषय में सचेत कर दिया। इसके तीन मास पश्चात् यह युवक वास्तव में एक मशीन के पास खड़ा काम कर रहा था, उसी समय उसे एक विलक्षण सी आवाज सुनाई थी, मेरी माँ की कही हुई बात उसे इस समय याद आ गई और वह मशीन से दूर भाग कर मकान के बाहर चला आया। वह बाहर आया ही था कि मशीन फट गई।

इसी प्रकार एक बार माँ ने अपने स्वप्न में देखा कि दूध की गाड़ी ले जानेवाले घोड़े पागल हो गये हैं और वे दूँध की गाड़ी को इधर-उधर दौड़ाने लगे हैं। इस गाड़ी में दूध बेंचनेवाला फँस गया और मरते-मरते बचा। माँ ने जब अपना स्वप्न दूसरे लोगों से कहा, तो वे हँसने लगे। परन्तु वह नहीं मानी

और उसने दूँधवाले को बुलाकर इस प्रकार की घटना से उसे सचेत किया। इस कथन के कुछ समय बाद ही वास्तव में स्वप्न देखी गयी घटना घटी और समय पर चेतावनी मिल जाने के कारण दूधवाला अपनी जान बचा सका।

डा॰ ओटो उल्फ ने कुछ उदाहरण देकर इसी व्याख्यान में यह भी बताया कि जिस प्रकार बिना किसी भौतिक साधन के हम दूसरे व्यक्ति के मन के विचार जान सकते हैं और दूर की घटनाओं का ज्ञान कर सकते हैं; उसी प्रकार अपने प्रिय व्यक्ति के सम्बन्ध की बातें भी हमें ज्ञात हो जाती हैं। कभी-कभी जानवरों के मन की बातें भी उनको प्यार करनेवाले स्वामी जान लेते हैं, डा॰ ओटो उल्फ ने अपने बचपन की कुछ घटनाओं का उल्लेख करते हुए बताया—'मैं कभी-कभी रात को देर करके घर लौटता था। मैं अपने कमरे की ताली कभी-कभी किसी ऐसी जगह रख देता था जहाँ मेरा हाथ नहीं पहुँचता था। एक दो बार मुझे अपने घर के दरवाजे पर देरतक ठहरना पड़ा। इसी बीच मैंने कल्पना की कि मैं सीढ़ी से चलकर दूसरी मंजिल पर पहुँच गया हूँ और वहाँ पर बरांडा पार करके अपनी माँ के कमरे के किवाड़ को खटखटाता हूँ और धीरे-धीरे माँ-माँ कहता हूँ। इस कल्पना का परिणाम यह होता था कि मेरी माँ अपने बिस्तर से उठकर कमरे के बाहर आती और सीढ़ी से उतर कर नीचे कमरे के किवाड़ खोलती जहाँ मैं उसे खड़ा मिलता।'

'अभी हाल की बात है कि एक दिन मैं अपने कमरे में किसी फाइल को ढूँढ़ने गया, जब मैं कमरे के बाहर आया तो अनायास मुझे पीछे हटकर देखने की प्रेरणा हुई। मैंने वहाँ देखा कि कमरे के दरवाजे में अधर पर मेरा कुत्ता टँगा हुआ है। मुझे देखकर आश्चर्य हुआ कि कुत्ता अधर में कैसे टँग गया। मैं जग रहा हूँ कि सो रहा हूँ। फिर विचार आया कि कुत्ते को ढूँढ़ूँ वह कहाँ है। कुत्ता घर में नहीं दिखाई दिया। इसी बीच एक बन्द अल्मारी से कुछ आवाज-सी आई। उसे खोलकर देखा गया, तो उसमें कुत्ता बन्द था। पीछे ज्ञात हुआ कि जब आलमारी खुली हुई थी तब कुत्ता उसमें बैठ गया था और कुछ दूसरी बातों में ध्यान फँसे रहने के समय ही आल्मारी का ताला बन्द कर दिया गया था। बन्द आल्मारी में बैठा हुआ कुत्ता जब घबड़ाने लगा, तो संभवतः उसने अपने विचार अपने मालिक को भेजे; इसी के कारण कुत्ता एक दिवा-स्वप्न में दरवाजे में टँगा हुआ दिखाई दिया।'

दूर की घटनाओं को जान सकने के दो उदाहरण डा॰ विलियम ब्राउन ने अपनी 'साइकोलोजी एण्ड साइकोथेरेपी' नामक पुस्तक में दिये हैं। प्रथम उदाहरण स्वीडेन बोर्ग का है। एक बार स्वीडेनबोर्ग इमैनुअल कान्ट के साथ

बर्लिन की एक पार्टी में बैठे हुए थे। इसी समय वे अचानक कुछ बेचैन से हो गये। कुछ देर बेचैन रहने के बाद वे शांत हो गये। वहाँ पर उपस्थित लोगों ने जब उनके इस प्रकार बेचैन और फिर शान्त होने का कारण पूछा, तो उन्होंने बताया कि स्टाकहोम में आग लग गई थी और वह उनके मकान के पास आ गई थी, इसीलिये वे बेचैन हो गये थे। परन्तु मकान में लगाने के पूर्व ही आग बुझा दी गई। अतः वे शान्त हो गए। पता चलाने पर घटना सत्य सिद्ध हुई। इसका वर्णन कान्ट ने अपनी 'आत्मजीवनी' में दिया है। दूसरी घटना डा० विलियम ब्राउन द्वारा किये गये एक सैनिक की है। इस सैनिक को फ्रान्स के एक अस्पताल में सम्मोहनावस्था में लाकर अपने घर का ध्यान करने को कहा गया और वहाँ जो कुछ उस समय हो रहा था उसका वर्णन करने को कहा गया। उस सैनिक ने जो वर्णन किया, पीछे खोज करने पर वह सत्य पाया गया।

अब प्रश्न यह है कि मनुष्य को क्या अपने मन की ऐसी अलौकिक शक्तियों को भी जाग्रत करना चाहिये, जिनसे वह दूसरे व्यक्तियों के मन की बात जान ले, दूर की घटनाओं का ज्ञान कर ले, और भविष्य में होनेवाली घटनाओं का भी दिग्दर्शन कर ले। इस विषय में हमें जो आधुनिक मनोविज्ञान से प्रकाश मिलता है, उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। मनुष्य में यह अलौकिक शक्तियाँ उसकी साभान्य मानसिक अवस्था में नहीं आतीं; केवल असाधारण मानसिक अवस्था में मनुष्य की सामान्य चेतना और उसकी अन्तश्चेतना में विभाजन हो जाता है। इस प्रकार की विभाजन हिस्टीरिया के रोग में प्राय: देखा जाता है। अतएव हिस्टीरिया का रोगी बहुत कुछ ऐसी बातें कह देता है, जो सामान्य व्यक्ति नहीं जान सकते। कभी-कभी उसकी भविष्यवाणी ठीक हो जाती है। कभी वह किसी व्यक्ति की छिपी बात को बता देता है और कभी दूर की बातों को कह देता है। परन्तु इन सब बातों के करने पर उसका कोई अधिकार नहीं रहता, यह सब अनायास अथवा उसकी इच्छा के प्रतिकूल होती हैं। इसीलिये हिस्टीरिया के रोगी के विषय में कहा जाता है कि उसके शरीर में कोई विशेष प्रकार का भूत-प्रेत आ गया है। भूत-प्रेत की शक्ति मनुष्य की सामान्य चेतना की शक्ति से कहीं अधिक होती है। आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से मनुष्य की यह भूत-प्रेत की शक्ति उसकी अचेतन मन की शक्ति ही है जो भूत-प्रेत की कल्पनाओं में आरोपित होकर प्रकाशित होती है। जिस शक्ति की उपस्थिति मनुष्य की चेतना साधारण नियमों के परे देखती है, उसके आने के लिये किसी असाधारण तत्व की कल्पना भी करनी पड़ती है।

जिस प्रकार हिस्टीरिया के रोगी में मानसिक विभाजन की अवस्था उसकी

इच्छा के प्रतिकूल ही उत्पन्न होती है, उसी प्रकार यह अवस्था अभ्यास के द्वारा मनुष्य अपनी इच्छा से भी कर सकता है। इसका उदाहरण ओझाओं में और भूत-प्रेत बुलानेवाले प्लैन्चेट के खेल दिखानेवालों में पाया जाता है। अपने मन और शरीर के शैथिलीकरण की अवस्था में यदि मनुष्य किसी विशेष प्रकार की शक्ति आने की कल्पना करे, तो वह इस शक्ति को कुछ दिन के अभ्यास के बाद पा लेता है। इस शक्ति को सामान्य चेतना की शक्ति नहीं कहा जा सकता है। अतएव इस प्रकार का अभ्यास करनेवाले लोग ऐसी शक्ति को देवी-देवता आदि की शक्ति कहते हैं। ओझा लोगों में उसी प्रकार का मानसिक विच्छेद हो जाता है, जैसा हिस्टिरिया के रोगियों को हो जाता है। परन्तु जहाँ प्रथम प्रकार का मानसिक विच्छेद व्यक्ति की इच्छा के प्रतिकूल होता है, वहाँ द्वितीय प्रकार का विच्छेद स्वेच्छा से होता है। उसका निश्चित समय और स्थान भी होता है। अब यदि इस प्रकार का विच्छेद कोई व्यक्ति बार-बार करने लगे और इससे वह विशेष प्रकार का लाभ उठाने लगे, तब उसकी इच्छा के प्रतिकूल भी यह विच्छेद होने लगता है। इसलिये भूत-प्रेतों को बुलानेवाले, देवी-देवताओं का चमत्कार दिखानेवाले व्यक्ति अपने जीवन में सुखी न रहकर दुखी हो जाते हैं। उनके भूत-प्रेत या देवी-देवता उनका लाभ न कर उनकी हानि ही करने लग जाते हैं। ऐसे लोगों को विशेष प्रकार के टोना-टोटका आदि करना ही पड़ता है।

इस तरह मनुष्य की यह अलौकिक शक्तियाँ उसकी आत्मा का प्रसार न कर उसे अन्धकार में डालती हैं। इसीलिये पुराने योगियों ने इन अलौकिक शक्तियों के प्रादुर्भूत करने के प्रति साधकों को सचेष्ट किया है। इन ऋद्धि-सिद्धियों को जगाकर मनुष्य आत्मज्ञान से वंचित रह जाता है और इनसे वह स्थायी लाभ प्राप्त न कर हानि ही प्राप्त करता है। मनुष्य की सबसे बड़ी हानि अपनी सामान्य चेतना को खो देना है। जो चेतना सभी प्राप्तियों का मूल्यांकन करती है यदि हम उसी को खो दें, तो हमारे पास रह ही क्या जायेगा?

मनुष्य अपनी चेतना का प्रसार करके ही उस वास्तविक अलौकिक शक्ति का अपने आपमें साक्षात्कार कर सकता है। चेतना का प्रसार चेतना को हटाकर नहीं हो सकता, जैसे कि हिस्टीरिया के रोगियों अथवा देवी-देवताओं के साधकों की मानसिक अवस्था में होता है, इन लोगों में सामान्य चेतना हटकर दूसरी चेतना आ जाती है। इससे व्यक्ति का कोई लाभ न होकर उसकी हानि होती है। यदि मनुष्य अपनी सामान्य चेतना को उसकी समकक्षी दूसरी चेतना के बदले न छोड़े, वरन् वह उसे एक महान् चेतना से मिला दे, तो एक ओर उसकी

सामान्य चेतना का लोप हो जायगा और दूसरी ओर उसका असीम प्रसार भी हो जायगा। परन्तु यह तभी हो सकता है जब मनुष्य चेतना में सीमा उत्पन्न करने-वाली सभी प्रकार की वासनाओं का—चाहे वे चेतन मन में उपस्थित हों अथवा अचेतन मन में—परित्याग करने में समर्थ हो। यह कार्य अत्यन्त कठिन है। जब तक मनुष्य पूर्णतः निरीह नहीं हो जाता, तब तक उसके व्यक्तित्व-द्वारा प्रकाशित अलौकिक शक्तियाँ उसको लाभ न कर अन्त में हानि ही करती हैं। कहा जाता है कि ईश्वर की शक्ति का उपयोग ईश्वर ही कर सकता है। अलौकिक शक्तियाँ ईश्वरी शक्तियाँ हैं। जब हम अपने आपको आध्यात्मिक तत्व से मिला देते हैं, अर्थात् जब हमारी कोई अपनी इच्छा नहीं रह जाती; तभी हमारे व्यक्तित्व-द्वारा प्रकाशित अलौकिक शक्तियाँ अपने आपका और लोक का कल्याण करती हैं। इस प्रकार जो व्यक्ति जितना ही अधिक अपनी अन्तरात्मा की समीपता पाता है, वह अपने आप में अलौकिक शक्तियों का उतना ही अधिक साक्षात्कार करता है। इसके लिये मनुष्य को मानसिक शुद्धि की आवश्यकता होती है अर्थात् उसे एक ओर अपनी चेतन और अचेतन वासनाओं का त्याग करना पड़ता है और दूसरी ओर इस त्याग के अभिमान का परित्याग करना पड़ता है; जो अपने आपको शून्य रूप बना देता है, उसी की शक्ति असीम हो जाती है।

———

अतिपूर्तिकरण

जिस प्रकार आरोपण, आदर्शीकरण आदि मानसिक क्रियाएँ मनुष्य के व्यवहार को विलक्षण बना देती है, उसी प्रकार अतिपूर्तिकरण की प्रतिक्रिया भी मनुष्यों के व्यवहारों को बड़ा ही जटिल एवं विलक्षण बना देती है जिस प्रकार प्रत्येक प्राणी में स्वभावतः अपनी शारीरिक कमी की पूर्ति करने की प्रकृति होती है, उसी प्रकार प्रत्येक प्राणी में अपनी मानसिक कमी की पूर्ति करने की प्रेरणा होती है। यदि शरीर का कोई अंग दुर्बल है, तो कोई दूसरा अंग प्रबल हो जाता है। अन्धे लोगों की श्रवण शक्ति अथवा स्पर्श-शक्ति सामान्य लोगों की अपेक्षा अधिक होती है। नाटे लोग ऊँचे स्वरसे बोलते हैं। दुर्बल लोगों की चिन्तन-शक्ति बढ़ जाती है। इसी तरह यदि किसी मनुष्य को कोई शारीरिक, सामाजिक अथवा आर्थिक कमी की वेदना त्रास देर ही हो, तो स्वभावतः उसे अपनी इन कमियों की पूर्ति के निमित्त अपनी कोई विशेष मानसिक शक्ति को बढ़ाने की प्रेरणा होती है। यूनानी मेथालाजी में 'विनस' (Venus) बहुत सुन्दर देवी है, परन्तु वह व्यभिचारिनी है, सिन्धिया काली है, परन्तु वह बड़ी चरित्रवान है सुकरात देखने में कुरूप था परन्तु यूनान का सबसे बड़ा विचारक था और चरित्र में वह संसार के महात्माओं में से एक था। अष्टावक्र आठ जगह से टेढ़े थे। जब वे राजा जनक की सभा में पहुँचे तो वहाँ उपस्थित सभी विद्वान उनके रूप को देखकर हँस पड़े, परन्तु दार्शनिक विषयों पर वादविवाद हुआ, तो सभी पंडित उनके सामने मूर्ख सिद्ध हुए। राजा जनक ने उनको अपना गुरु बना लिया। चाणक्य इतने कुरूप थे कि राजानन्द ने उन्हें अपमानित करके सभा से निकाल दिया। कहा जाता है कि गोरा शुद्र और काला ब्राह्मण बड़े अशुभ होते हैं। परन्तु इनका वर्ण तो बिलकुल ही काला था। इन्हीं चाणक्य ने नन्द वंश के राज्य का नाश किया, यूनानियों को देश से भगाया और चन्द्रगुप्त मौर्य को भारत का सम्राट् बनाया। नेपोलियन बोनापार्ट शरीर से दुबला-पतला और कद में नाटा था उसे उसके स्कूल के साथी लड़की कहकर चिढ़ाया करते थे इसी लड़की नामधारी नेपोलियन ने सारे विश्व को अपनी बहादुरी से थर्रा दिया था। जूलियस सिजर, चंगेज खाँ और अकबर को मूर्छा का रोग था डेमोस्थनीज, अलेक्जेण्डर (सिकन्दर) एवं डार्विन हकलाते थे; रणजीत सिंह काने थे। उपर्युक्त उदाहरण से यह स्पष्ट विदित होता है कि यदि मनुष्य में एक प्रकार की कमी हो तो दूसरी प्रकार की खूबियाँ उस कमी की पूर्त्ति के

रूप में उपस्थित हो जाती है। इस प्रकार का पूर्त्तिकरण सामान्य, स्वस्थ तथा उपयोगी मानसिक प्रतिक्रिया है।' इससे भिन्न कुछ मानसिक प्रतिक्रियाएँ ऐसी है जो असाधारण और अस्वस्थ होती है। इन्हीं प्रतिक्रियाओं को अतिपूरण की प्रतिक्रिया कहा जाता है। हम कितने ही लोगों में सफाई की बेहद झक देखते हैं। हमारे राष्ट्र के एक प्रमुख नेता* शौच के बाद देर तक साबुन से हाथ मलते हैं। एक दूसरी राष्ट्र सेविका, जो विधानसभा की सदस्या भी है बाहर से लौट कर आने पर पहनने ओढ़ने के सारे कपड़े धोती हैं। जूते भी पानी से धोते हैं। बाजार से लाया हुआ गेहूँ साबुन से धोया जाता है। उनके कुछ रिस्तेदार उनके घर जाड़े के दिनों में इसलिये नहीं आते कि उन्हें अपने कम्बल वगैरह धोने पड़ेंगे। हमारी एक छात्रा जब साफ चादर पर बैठती है, तब उसे सन्देह रहता है कि जिसमें कोई न कोई गन्दगी अवश्य है। इस सन्देह के कारण वह किसी विषय पर ठीक से नहीं सोच पाती है।

उपर्युक्त उदाहरणों में दर्शायी गयी गन्दगी के प्रति सतर्कता वास्तव में अपने मन के भीतर उपस्थित गन्दगी के प्रति सतर्कता की प्रतिक्रिया थी। इस प्रकार की प्रतिक्रिया को अतिपूर्त्तिकरण की प्रतिक्रिया कहते हैं। जिस मनुष्य के मन में प्रबल अनैतिक वासनाओं के कारण अत्यन्त मानसिक बेचैनी रहती है वह बाहर की अव्यवस्था को देखकर बेचैन हो जाता है। वह बाहर की अव्यवस्था को ठीक करके अपनी आन्तरिक अव्यवस्था को भुलाने का प्रयत्न करता है यह अचेतन मन की अतिपूर्तिकरण की प्रतिक्रिया है। अचेतन मन की सभी क्रियाओं के समान यह मनुष्य के अनजाने होती है। यदि इस प्रतिक्रिया का कोई आन्तरिक अर्थ उस व्यक्ति को बताने की चेष्टा करे तो वह उससे बेहद नाराज हो जायेगा। जब अनेक प्रकार के कष्ट भोग कर स्वयं ही मनुष्य अपनी इन असाधारण चेष्टाओं का अर्थ जानना चाहता है तभी उसे लाभ होता है।

अतिपूर्तिकरण एक पूर्तिकरण में अन्तर यह होता है कि जहाँ पहले प्रकार की प्रतिक्रियाएँ व्यक्ति एवं समाज के लिये उपयोगी सिद्ध होती है, वहाँ दूसरे

---

* उपर्युक्त नेता को एक दिन एक बड़े कालेज में भाषण देना था। भाषण देने के पूर्व किसी मित्र ने उन्हें जलपान कराया, जिनमें रसगुल्ला भी दिया गया। रसगुल्ला का थोड़ा सा रस उनकी धोती पर गिर पड़ा। इस धोती पर पड़े धब्बे ने इस प्रकार बेचैन कर दिया कि वे न तो देर तक नहाये ही वरन् धोती को बहुत समय तक धोते रहे इसके कारण भाषण के स्थान पर पहुँचने में एक घण्टे देर कर दिये।

प्रकार की प्रतिक्रियाएँ निरर्थक ही नहीं होती, वरन व्यक्ति के लिये हानिकारक सिद्ध होती है। लेखक का एक छात्र यदि एक चम्मच चीनी अपने चाय के कप में डालने के लिये दूसरे के डिब्बे से ले लेवे तो उसे इतनी मानसिक बेचैनी हो जाती थी कि वह बाध्य होकर उस चम्मच भर चीनी को सबकी आँख बचाकर डब्बे में डाल देता था। हमारे एक मित्र ने एक ताँगेवाले को एक आना पैसा भाड़े में कम दिया इससे उन्हें इतनी मानसिक बेचैनी हुई कि वे ताँगेवाले के घर का पता लगाने का प्रयास करने लगे। घर का पता न लगने पर उन्हें दो तीन दिनों तक मानसिक अशान्ति बनी रही। इस प्रकार की अशान्ति का वास्तविक कारण वह नग्न घटना नहीं जिसके कारण बाहरी रूप से अशान्ति दिखायी देती है। उनकी अशान्ति का कारण उनके अचेतन मन के भीतर की घटनाएँ बाहरी अशांति को व्यक्त करती है। छोटी-छोटी बातों में मनुष्य सच्चा बनकर अपनी भयंकर चोरी की मनोवृत्ति को छिपाने की चेष्टा करता है। यह अचेतन मन के अतिपूर्तिकरण की प्रतिक्रिया का परिणाम है। जहाँ नैतिकता के अत्युच्चादर्श की चर्चा होती है वहीं दुराचार एवं व्यभिचार की संभावना रहती है। मनुष्य अपने द्वेष की मनोवृति को विश्वबन्धुत्व के नारे के नीचे छिपाना चाहता है अन्तर्मन में उपस्थित हिंसा की मनोवृत्ति अहिंसा के आवरण को धारण कर लेती है। ऐसे नैतिक मूल्यों की चर्चा करना बुरा नहीं परन्तु ज़हाँ इनकी अत्यधिक चर्चा होती है वहाँ विरोधी प्रवृत्तियों की अचेतन मन में उपस्थिति रहती है। चोर की दाढ़ी में तिनका वाली कहावत अतिपूर्तिकरण की प्रतिक्रिया के मनोविज्ञान को व्यक्त करती है।

अतिपूर्तिकरण की प्रतिक्रिया का एक सामान्य उदाहरण लड़ाई में लड़े जानेवाले सिपाहियों के व्यवहार में पाया जाता है। जो सिपाही युद्ध से अत्यन्त डरते हैं वे ही युद्ध में बहादुरी के कामों की डींग हाकते हैं। ऐसे ही लोगों को एकाएक लकवा का रोग हो जाता है इस प्रकार उनका. दमित भय बाहर आ जाता है। जिन लोगों में नैतिकता सम्बन्धी अतिमूर्तिकरण की प्रतिक्रिया पाई जाती है, उन्हें किसी प्रकार की आत्मस्वीकृति करना बड़ा कठिन होता है। ऐसे लोग दूसरे लोगों के शिक्षक बन जाते हैं। और इस तरह अपनी एवं दूसरों की क्षति करते हैं। मन की इस क्रिया को समझ कर हम बहुत से लोगों को अनेक प्रकार के सम्भव दुःख एवं दुर्घटनाओं से बचा सकते हैं।

———

जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा होती है। जब राजा में से देवत्व चला गया तो सारी प्रजा में से देवत्व चला गया। जैसे प्राचीन काल में राजा अपने को निरंकुश शक्तिधारी मानता था उसी प्रकार पिता भी अपने को घर का राजा मानता रहा। वह अपनी पत्नी का स्वामी तो था ही अपने बच्चों के प्रति भी वैसा ही व्यवहार करता था जैसा राजा प्रजा के साथ करता है। घर में पिता जो चाहे वह करता था। उसकी बात को काटने का किसी को अधिकार नहीं था। अब पुरानी व्यवस्था का अन्त हो गया है। अब जो चाहता है कि मेरे शिष्यगण मुझे पूजें उसे उसके छात्रों की निन्दा और उपेक्षा ही मिलेगी। इसी प्रकार जो पिता चाहता है कि मेरे लड़के मुझसे डरें और मेरे हुकुम की पाबन्दी करें उसे कष्ट ही भोगना पड़ेगा।

अभी भारतवर्ष में जनतन्त्र वाद का पहला अनुभव हुआ है, अतएव अधिकारों की अधिक चर्चा है। अपने को दूसरों के बराबर बनाने की भावना तो हममें आ गई है परन्तु दूसरों को अपने समान बनाने की भावना का हममें जागरण नहीं हुआ है। पहले प्रकार की भावना से अधिकारों की उत्पत्ति होती है और दूसरे प्रकार की भावना से कर्तव्यों की। परन्तु जैसे-जैसे शिक्षा का प्रसार होगा वैसे-वैसे मनुष्य अपने अधिकारों के साथ-साथ कर्तव्यों को भी पूरा करने की चेष्टा करेगा।

जनतन्त्रवाद की दूसरी माँग संघ भाव की है। जो व्यक्ति जनतन्त्रवादी है वह अपने आप को समाज से अलग करने कीं चेष्टा न करके, सबसे मिल जुल कर रहने की चेष्टा करता है। जनतन्त्र वाद में गुरुशिष्य एक साथ बैठकर विचार विमर्श करते है। यदि शिक्षक ने कोई बात कही तो विद्यार्थी उस पर अपना विचार प्रकट करता है। जनतन्त्रवादी शिक्षा में व्याख्यान पद्धति समाप्त होती है और उसके बदले विचार-विमर्श पद्धति का आगमन हो जाता है। उसी प्रकार घर में भी पिता वही काम करता है जो सम्पूर्ण परिवार का निर्णय होता है। घर का प्रत्येक सदस्य इस निर्णय करने में अपना सहयोग प्रदान करता है। किसी कालेज में प्रिन्सिपल और अध्यापक-गण आपस में विचारविमर्श करते है तभी कुछ काम करते हैं। इस प्रकार प्रजातन्त्र में समूह और संगठन के भाव की प्रधानता रहती है।

प्रजातन्त्रवादी समाज का तीसरा गुण उस नियम की पाबन्दी है जिसे पूरे संघ ने मिलकर बनाया है और जिसे सम्पूर्ण संस्था का प्रत्येक सदस्य अपना धर्म समझता है। इस समाज में एक ओर निर्णय के पहुँचने में प्रत्येक व्यक्ति का हाथ होता है परन्तु दूसरी ओर उसके पालन करने में सभी लोगों के

लिए अनिवार्यता रहती है। राजतंत्रवादी समाज में राजा यदि अपने बनाये नियम को तोड़े तो उसकी कोई आलोचना नहीं करता। कहा जाता है 'समरथ को नहिं दोष गोसाईं'। राजा को नियम बनाने का अधिकार है और जनता को नियम पालन करने का। राजा नियम के ऊपर है। फिर राजा जिसको अपने से मुक्त करे वह उससे मुक्त ही है। जनतन्त्रवादी समाज में इस प्रकार की विशेष मुक्ति के लिए कोई स्थान नहीं है।

जनतंत्रवाद की चौथी माँग मानव को मानव के रूप में मानने की है। सामान्य समाज में मनुष्य की इज्जत या कीमत पेशे से होती है। मनुष्य की मानवता के नाते कोई भी इज्जत नही होती। यदि कोई आदमी चपरासी का काम करता है तो वह सब समय के लिये चपरासी ही हो जाता है। जनतंत्रवाद में ऐसा नहीं होता है। चपरासी तभी तक चपरासी है जब तक वह आफिस में काम करता है। बाकी समय वह दूसरों के समान ही अधिकार रखने वाला माना जाता है। अविकसित समाज में पेशा मनुष्यत्व को खा जाता है। यदि कोई सफाई का काम करता है तो हम उसे भंगी जाति का आदमी बना देते हैं। यदि अपनी आजीविका के लिए कोई आफिस में काम करता है तो हम उसे क्लर्क कहने लगते हैं। जनतंत्रवादी समाज में पेशे के अनुसार होने वाले भेद-भाव केवल आफिस तक ही सीमित रहते हैं, बाद में सभी लोग अपने को मानव के रूप में मानते हैं और उसी प्रकार आपस में समता का व्यवहार करते हैं।

भारतवर्ष में इस प्रकार के जनतंत्रवाद की अभी स्थापना नहीं हुई है। अभी तक राजनैतिक क्षेत्र में भी पूरा जनतंत्रवाद क्रियाशील नहीं हुआ है। भारतवर्ष के अशिक्षित लोगों के लिये तो वर्तमान राजनीतिक परिवर्तन केवल मालिकों का परिवर्तन हुआ है। अशिक्षित जनता जिस प्रकार पहले अंग्रेजो को अपना महाप्रभु मानती थी, उसी प्रकार आज राजमन्त्रियों को अपना स्वामी मानने लगी है। फिर आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में तो जनतंत्रवाद बिल्कुल प्रारम्भिक अवस्था में है। आज कोई माता-पिता अपने पुत्र को समानता का अधिकार नहीं देना चाहते, मालिक मजदूर को अधिकार नहीं देना चाहता, आफिसर मातहतों को अपने समान ही आदमी मानने को तैयार नहीं है, परन्तु अब संसार में जनतंत्रवाद का वातावरण फैल चुका है और पुरानी मनोवृत्ति के लोग कभी सुख से नहीं जी सकेंगे। प्रत्येक शिक्षक का यह कर्तव्य है कि राष्ट्र के नर-नारियों की, राष्ट्र के होनहार नागरिकों की मनोवृत्ति इस प्रकार तैयार करें कि वे सच्चे जनतंत्रवाद को देश में चरितार्थ होते हुए देख सके और उसमें अपना जीवन सुख से बितावें।

—आर० आर० कुमारिया

मानव जीवन के मूल्य

मानव जीवन के मूल्य स्वयं मनुष्य के मन से निर्मित होते हैं। मनुष्य किसी वस्तु की चाह करता है और जब वह उसे प्राप्त करने की चेष्टा करता है तो उसे चाही हुई वस्तु में मूल्य का दर्शन होता है। यह अपने प्रयत्न का ही परिणाम है कि हम एक वस्तु में मूल्य देखते हैं और दूसरे में नहीं। जिस वस्तु की प्राप्ति के लिए हमें जितना ही परिश्रम करना पड़ता है, उसका हमारे लिए उतना ही मूल्य भी होता है। उसके खो जाने में हमें कम कष्ट नहीं होता।

मनुष्य के मूल्य उसके विचार एवं उसकी कल्पना के कार्यों के परिणाम हैं। पशुओं में न तो विचार करने की और न तो कल्पना करने की ही शक्ति रहती है। अतएव उनके जीवन में मूल्यों का प्रश्न ही नहीं उठता। पशु वाह्य परिस्थिति एवं आन्तरिक प्रकृति का दास होता है। वह परिस्थितियों पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता। वह अपनी स्वतः की प्रकृति को न तो जानता है और न उस पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा ही करता है। मनुष्य न केवल वाह्य प्रकृति पर, वरन् अपनी आन्तरिक प्रकृति पर भी अर्थात् अपनी मूल प्रवृतियों पर भी विजय प्राप्त करने की कोशिश करता है। वास्तव में वाह्य प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा करना और आन्तरिक प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा करना एक ही तथ्य के दो रूप हैं। वही मनुष्य वाह्यजगत में भी अपनी क्रियाओं में सफल होता है जिसने अपनी मूल प्रवृत्तियों को और अपने आवेगों को अपनेमें वशीभूत रखने का प्रयास किया है। इसी प्रकार जो व्यक्ति आन्तरिक जगत में सफल होने की कामना रखते हैं अर्थात् जो अपने काम, क्रोध, लोभादि मनोभावों को वश में रखना चाहते हैं, उन्हें संसार के नये-नये कामों में अपने आपको लगाये रखना नितान्त आवश्यक होता है। मनुष्य के सामने वाह्य जगत का कार्य जितना ही कठिन होता है, उसकी आत्म-नियंत्रण की शक्ति में उतना ही अधिक विकास होता है। संसार के महान पुरुष सदा ऐसे व्यक्ति रहे हैं जिन्होंने असाधारण पुरुषार्थ दिखाकर अपने जीवन में ऐसे काम किये जो दूसरे लोगों के लिए असम्भव प्रतीत होते थे। इन महान् पुरुषों की महानता इन बड़े कामों के करने में नहीं है, वरन् उन कामों के करने के लिए जो मानसिक शक्ति के संचय की आवश्यकता होती है, उसके संचित करने में है। किसी महान पुरुष का बाहरी कार्य एक ओर उसकी आध्यात्मिक साधना का अंग है तथा दूसरी ओर वह उसकी आन्तरिक महानता को व्यक्त करता है।

भगवान कृष्ण, अर्जुन, रामचन्द्र, शिवाजी, लोकमान्य तिलक एवं सुभाषचन्द्रबोस ने अपने सामने ऐसे कार्य को पूरा करने का कार्यक्रम बनाया था जो साधारण पुरुषों के लिए असम्भव थे। जिस व्यक्ति को पद-पद पर मृत्यु का सामना करना पड़ता है, वही ऐसी आध्यात्मिकशक्ति का संचय करता है जिससे न केवल अपने आपका वरन् पूरे मानव समाज का लाभ होता है। जब किसी मनुष्य के सामने बड़ा ही जटिल काम नहीं होता, तो उसे चरित्र के उन गुणों की भी आवश्जकता नहीं होती जो बड़े काम करने के लिए अनिवार्य है। इस दृष्टि से यदि देखा जाय तो भारतवर्ष की स्वतन्त्रता प्राप्ति राष्ट्र के नवयुवकों के लिए वरदान न बनकर अभिशाप ही बनी है। अंग्रेजों ने जितनी उदारता भारतवर्ष को स्वतन्त्रता देने में की उतनी ही राष्ट्र के नवयुवकों की चारित्रिक क्षति हुई। नवयुवक सदा किसी असम्भव कार्य के लिए तत्पर रहता है। जब ऐसा कोई कार्य उसके समक्ष नहीं रहता और जब उसके सामने धन कमाने, विद्योपार्जन करने अथवा पद प्राप्त करने भर के कार्यक्रम रह जाते हैं, तब उसकी तेजस्विता का ह्रास शुरू हो जाता है। जब मानवशक्ति पुरोगामी नहीं होती है, तो वह अपने आप ही प्रतिगामी बन जाती है।

आज भारतवर्ष में नवयुवकों में मानसिक रोगों की संख्या बढ़ रही है। रूस में इन रोगों की संख्या बिलकुल कम है। १९३० के पूर्व जर्मनी की अवस्था वही थी जो आज भारत की है। जब हिटलर ने राष्ट्र के नवयुवकों के सामने एक साधारण पुरुषार्थ की योजना रख दी तो सभी मानसिक रोग सरलता से समाप्त हो गये तथा मानसिक चिकित्सकों का व्यवसाय ही बन्द हो गया।

आज हमारे सामने कितने ही नवयुवक अकेले रहने का भय, साँप-छछुन्दर का भय, गन्दगी का भय, हृदय की धड़कन, कोष्ठबद्धता, दमा, अकारण चिन्ता, बाध्य-विचारों अथवा नेत्ररोग से पीड़ित होकर आते हैं। ये सभी प्रकार के रोग जीवन में ठोस कार्यक्रम के अभाव में उत्पन्न होते हैं। जब किसी व्यक्ति की लगन किसी मूल्यवान रचनात्मक कार्यक्रम में नहीं रहती तो वह अपने अतीत काम की छोटी छोटी भूलों पर भावात्मक चिन्तन करता है तथा इस प्रकार अपने जीवन में अनेक प्रकार की मानसिक ग्रन्थियों को उत्पन्न कर लेता है। जिस व्यक्ति की कल्पना कुंठित हो गई है और जो अतीत में रमण करता है वह या तो समय के पूर्व वृद्ध हो जाता है अथवा मानसिक रोगी है।

मनुष्य के जीवन के मूल्यों में विकास धीरे-धीरे होता है। पहिले उसकी आकांक्षाएँ दैहिक सुख सम्बन्धी होती हैं। जब मनुष्य इन इच्छाओं को तृप्त

करने का काफी प्रयत्न कर लेता है और जब उसे दैहिक सुख से असन्तोष हो जाता है, अर्थात् उसको इस सुख की कमी का ज्ञान हो जाता है तब वह अपना अधिक समय दूसरों के सुखों की पूर्ति में खर्च करता है। उसे जो अपने खाने में आनन्द नहीं मिलता वह आनन्द दूसरों को खिलाने में मिलता है। वह व्यक्तिगत जीवन की चिंताओं से चिंतित न होकर दूसरों की चिन्ताओं से चिंतित होता है। संसार का सर्वोत्तम पुरुष वह है, जो सब समय अपने आपको काम में लगाए रखे। परन्तु इनकी व्यक्तिगत इच्छाएँ कुछ भी नहीं होती। किसी भी समाज के सुसंगठित बने रहने के लिए और उसके उत्थान के लिए कृष्ण जैसे कर्मयोगियों की सदा आवश्यकता रहती है।

भारतवर्ष में क्रियात्मक जीवन को वैसी ऊँची दृष्टि से नहीं देखा जाता जैसा उसे पश्चिम के सभ्य देशों में देखा जाता है। हम अधिकतर अन्तर्दर्शन और चित्तवृतियों का नियंत्रण करने में लगे रहते हैं। परन्तु इस प्रकार हम अपनी मानसिक शक्ति का शोध नहीं कर पाते। जो मनुष्य अपनी मानसिक शक्ति को समाजोपयोगी कार्य में खर्च नहीं करता वह कभी-कभी इच्छा के प्रतिकूल ही कुछ दुष्कार्य कर बैठता है और फिर वह अनेक प्रकार से अपनी आत्मभर्त्सना करता है। अतएव समाजोपयोगी किसी भी कार्य में अपने आपको सदा लगाये रखना, अपनी मानसिक शक्ति को सुरक्षित रखने का और उसे बढ़ाने का सर्वोत्तम उपाय है। काम जितना ही कठिन हो, उतना ही वह चरित्र के गुणों का विकास करता है। जो मनुष्य कठिन परिश्रम करके अपने आपकी उन्नति करते हैं, वे भी समाज की मौलिक सेवा करते हैं। उनके उदाहरण से दूसरे लोग प्रोत्साहित होकर अपने को ऊँचा उठाने की चेष्टा करते हैं। और इस प्रकार अनुकरण की प्रवृति के द्वारा पूरे समाज का लाभ होता है।

———

दमित स्मृति के जागरण से रोग की समाप्ति

मेगडूगल ने अपनी 'एबनार्मल साइकालाजी' में एक ऐसे रोगी का वर्णन किया है जो सदा डरा करता था कि पीछे से कोई उसे पकड़ लेगा। वह समाज का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति था। उसकी उमर ५० साल की हो गई थी। यह भय उसे निरर्थक दिखाई देता था परन्तु वह उसे रोक नहीं पाता था। यदि उसे किसी सभा में जाना हो तो वह ऐसे स्थान पर बैठता जहाँ उसके पीछे दीवार हो, ताकि किसी के पीछे से आने का भय न रहे। एक दिन यही व्यक्ति अपने बचपन के गाँव में गया। वहाँ उसका बड़ा स्वागत किया गया। वह गाँव के विभिन्न लोगों के पास उनके घर पर भेंट करने गया। इसी बीच वह एक बूढ़े बनिये की दुकान पर पहुँचा। उसने उससे अनेक प्रकार की कुशल पूछी। बात बात में उसने मुसकराते हुए यह भी कह दिया कि क्या अब तुमने बोरों में से अखरोट की चोरी करना छोड़ दिया। इस बात को सुनते ही उसका चेहरा लाल पड़ गया। उसको बचपन की वे सभी बातें याद आ गईं जो अखरोटें की चोरी के साथ सम्बन्धित थीं। शर्म के मारे उसका चेहरा नीचा हो गया। परन्तु एक क्षण में ही उसका रोग समाप्त हो गया।

जब यह व्यक्ति १० साल का लड़का था तो वह अपने घर से आकर गाँव के इस बनिये के यहाँ से अखरोट चुरा ले गया था। ये ऐसी जगह पर रखे थे जहाँ उन्हें कोई सब समय देखता न था। एक रोज इस बनिये ने उस बालक की चेष्टायें देखकर उसकी नियत पर सन्देह किया और वह इस ताक में रहा कि जब वह लड़का कोई चीज उठाकर ले जाने लगेगा उसी समय उसे पकड़ा जावेगा। अतएव ज्योंही लड़का बोरे से मुट्ठी भर अखरोट लेकर चला, झट बनिये ने उसके कुर्ते की कालर पीछे से पकड़ ली। अब क्या था शरीर काटो तो खून नहीं, यह दशा उस लड़के की हो गई। वह प्रतिष्ठित घर का बालक तो था ही, उसे डर लगा कि उसकी चोरी की बात सभी लोग जान लेंगे और इससे उसका जीवन ही भार रूप हो जावेगा। बनिये ने उसे छोड़ दिया और इस घटना की बात किसी से नहीं कही। परन्तु लड़के के मन पर तो लज्जा और ग्लानि युक्त घटना के संस्कार बन ही चुके थे। इनके परिणाम स्वरूप एक ओर उसने अपने आप को समाज में ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया और एक बड़े सच्चे नागरिक के रूप में प्रसिद्ध हो गया और दूसरी ओर उसे अकारण भय के रूप में पुराने कृत्य का भुगतान करना पड़ा। जब इस व्यक्ति को पुरानी दमित स्मृति याद आ गई तो उसका रोग समाप्त हो गया।

अभी हाल की बात है हमारे यहाँ आने वाले रोगी को कान में सनसनाहट होती रहती थी। इस सनसनाहट के कारण उसका मन सदा उदास रहता था। इधर उसे प्रमेह का रोग भी है जिसकी बहुत सी चिकित्सा कराई, पर रोग न गया! वह अभी अपने जीवन की भावात्मक घटनाएँ लिख रहा था। उसने कामवासना सम्बन्धी भी अनेक बातें लिखीं। ज्योंही उसने यह बात लिखी कि उसने अपनी वासना की तृप्ति के लिए एक बार पशु से भी मैथुन किया उसके एक कान की सनसनाहट एकाएक जाती रही।

लेखक के एक शिष्य को अपनी परीक्षा के समय घड़ी (टाइम पीस) की टकटकाहट पढ़ने में विघ्न डालने लगी। इससे परेशान होकर उसने घड़ी को बाजू के कमरे में रखा। परन्तु इससे दिल की घबड़ाहट और भी बढ़ गयी। वह घड़ी के बिना भी नहीं पढ़ सकता था और घड़ी उसे पढ़ने भी नहीं देती थी। यह व्यक्ति मनोविज्ञान का प्रथम श्रेणी का विद्यार्थी है। वह जानता है कि ये परेशान करने वाली वस्तु किसी दूसरी बातों का प्रतीक होती हैं। अतएव वह ऐसी बात को सोचने लगा जिसका प्रतीक घड़ी की टकटकाहट हो सकती है। कई दिनों तक कुछ भी ध्यान में न आया। एक रोज मानसिक शैथिलीकरण की अवस्था में उसे ध्यान आया कि एक बार जब वह अपनी स्त्री के पास सोया था और उससे काम-सम्बन्ध करना चाहता था तो पास में कोई लड़की जाग गई थी और वह रोने लगी थी। उससे उसे बड़ा क्षोभ हुआ। उसने उस लड़की को अपनी माँ के पास बाजू के कमरे में छोड़ दिया। परन्तु उसकी आत्मा फिर उसे कोसने लगी। इस प्रकार वह रात्रि अशान्ति ही में व्यतीत हुई। उसे समझ में आया कि घड़ी का शोर मचाना लड़की के शोर मचाने का प्रतीक है और उसका पढ़ना भोग क्रिया का। घड़ी के कमरा बदलने से उसे इस लिये ही परेशानी होती थी कि यह प्रतीक रूप से उस आत्मग्लानि को जाग्रत करती जो रोती हुई लड़की को एक कमरे से दूसरे में ले जाने के कारण उसे हुई थी। ज्योंहीं यह पुरानी घटना रोगी को याद आई उसकी परेशानी एकाएक नष्ट हो गई।

इसी युवक का एक दूसरा और अनुभव उल्लेखनीय है। गत वर्ष होली के समय यह अपने देहात के घर गया था। वहाँ पहुँचने पर जब सब लोग अपने मनोरंजन में लगे हुए थे उस समय इसे एकाएक पटाके की आवाज परेशान करने लगी। जब पटाके की कोई आवाज होती तो उसे मालूम होता था कि कोई व्यक्ति उसके हृदय पर एक भारी घन पटक रहा है। इस आवाज के भय के मारे वह अपना घर छोड़कर एक मील दूर गंगा के किनारे सबेरे

दमित स्मृति के जागरण से रोग की समाप्ति

मेगडूगल ने अपनी 'एबनार्मल साइकालाजी' में एक ऐसे रोगी का वर्णन किया है जो सदा डरा करता था कि पीछे से कोई उसे पकड़ लेगा। वह समाज का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति था। उसकी उमर ५० साल की हो गई थी। यह भय उसे निरर्थक दिखाई देता था परन्तु वह उसे रोक नहीं पाता था। यदि उसे किसी सभा में जाना हो तो वह ऐसे स्थान पर बैठता जहाँ उसके पीछे दीवार हो, ताकि किसी के पीछे से आने का भय न रहे। एक दिन यही व्यक्ति अपने बचपन के गाँव में गया। वहाँ उसका बड़ा स्वागत किया गया। वह गाँव के विभिन्न लोगों के पास उनके घर पर भेंट करने गया। इसी बीच वह एक बूढ़े बनिये की दुकान पर पहुँचा। उसने उससे अनेक प्रकार की कुशल पूछी। बात बात में उसने मुसकराते हुए यह भी कह दिया कि क्या अब तुमने बोरों में से अखरोट की चोरी करना छोड़ दिया। इस बात को सुनते ही उसका चेहरा लाल पड़ गया। उसको बचपन की वे सभी बातें याद आ गईं जो अखरोट की चोरी के साथ सम्बन्धित थीं। शर्म के मारे उसका चेहरा नीचा हो गया। परन्तु एक क्षण में ही उसका रोग समाप्त हो गया।

जब यह व्यक्ति १० साल का लड़का था तो वह अपने घर से आकर गाँव के इस बनिये के यहाँ से अखरोट चुरा ले गया था। ये ऐसी जगह पर रखे थे जहाँ उन्हें कोई सब समय देखता न था। एक रोज इस बनिये ने उस बालक की चेष्टायें देखकर उसकी नियत पर सन्देह किया और वह इस ताक में रहा कि जब वह लड़का कोई चीज उठाकर ले जाने लगेगा उसी समय उसे पकड़ा जावेगा। अतएव ज्योंही लड़का बोरे से मुट्ठी भर अखरोट लेकर चला, झट बनिये ने उसके कुर्ते की कालर पीछे से पकड़ ली। अब क्या था शरीर काटो तो खून नहीं, यह दशा उस लड़के की हो गई। वह प्रतिष्ठित घर का बालक तो था ही, उसे डर लगा कि उसकी चोरी की बात सभी लोग जान लेंगे और इससे उसका जीवन ही भार रूप हो जावेगा। बनिये ने उसे छोड़ दिया और इस घटना की बात किसी से नहीं कही। परन्तु लड़के के मन पर तो लज्जा और ग्लानि युक्त घटना के संस्कार बन ही चुके थे। इनके परिणाम स्वरूप एक ओर उसने अपने आप को समाज में ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया और एक बड़े सच्चे नागरिक के रूप में प्रसिद्ध हो गया और दूसरी ओर उसे अकारण भय के रूप में पुराने कृत्य का भुगतान करना पड़ा। जब इस व्यक्ति को पुरानी दमित स्मृति याद आ गई तो उसका रोग समाप्त हो गया।

अभी हाल की बात है हमारे यहाँ आने वाले रोगी को कान में सनसनाहट होती रहती थी। इस सनसनाहट के कारण उसका मन सदा उदास रहता था। इधर उसे प्रमेह का रोग भी है जिसकी बहुत सी चिकित्सा कराई, पर रोग न गया! वह अभी अपने जीवन की भावात्मक घटनाएँ लिख रहा था। उसने कामवासना सम्बन्धी भी अनेक बातें लिखीं। ज्योंही उसने यह बात लिखी कि उसने अपनी वासना की तृप्ति के लिए एक बार पशु से भी मैथुन किया उसके एक कान की सनसनाहट एकाएक जाती रही।

लेखक के एक शिष्य को अपनी परीक्षा के समय घड़ी (टाइम पीस) की टकटकाहट पढ़ने में विघ्न डालने लगी। इससे परेशान होकर उसने घड़ी को बाजू के कमरे में रखा। परन्तु इससे दिल की घबड़ाहट और भी बढ़ गयी। वह घड़ी के बिना भी नहीं पढ़ सकता था और घड़ी उसे पढ़ने भी नहीं देती थी। यह व्यक्ति मनोविज्ञान का प्रथम श्रेणी का विद्यार्थी है। वह जानता है कि ये परेशान करने वाली वस्तु किसी दूसरी बातों का प्रतीक होती हैं। अतएव वह ऐसी बात को सोचने लगा जिसका प्रतीक घड़ी की टकटकाहट हो सकती है। कई दिनों तक कुछ भी ध्यान में न आया। एक रोज मानसिक शैथिलीकरण की अवस्था में उसे ध्यान आया कि एक बार जब वह अपनी स्त्री के पास सोया था और उससे काम-सम्बन्ध करना चाहता था तो पास में कोई लड़की जाग गई थी और वह रोने लगी थी। उससे उसे बड़ा क्षोभ हुआ। उसने उस लड़की को अपनी माँ के पास बाजू के कमरे में छोड़ दिया। परन्तु उसकी आत्मा फिर उसे कोसने लगी। इस प्रकार वह रात्रि अशान्ति ही में व्यतीत हुई। उसे समझ में आया कि घड़ी का शोर मचाना लड़की के शोर मचाने का प्रतीक है और उसका पढ़ना भोग क्रिया का। घड़ी के कमरा बदलने से उसे इस लिये ही परेशानी होती थी कि यह प्रतीक रूप से उस आत्मग्लानि को जाग्रत करती जो रोती हुई लड़की को एक कमरे से दूसरे में ले जाने के कारण उसे हुई थी। ज्योंहीं यह पुरानी घटना रोगी को याद आई उसकी परेशानी एकाएक नष्ट हो गई।

इसी युवक का एक दूसरा और अनुभव उल्लेखनीय है। गत वर्ष होली के समय यह अपने देहात के घर गया था। वहाँ पहुँचने पर जब सब लोग अपने मनोरंजन में लगे हुए थे उस समय इसे एकाएक पटाके की आवाज परेशान करने लगी। जब पटाके की कोई आवाज होती तो उसे मालूम होता था कि कोई व्यक्ति उसके हृदय पर एक भारी घन पटक रहा है। इस आवाज के भय के मारे वह अपना घर छोड़कर एक मील दूर गंगा के किनारे सबेरे

ही उठकर चला जाता और रात होने पर वापस आता। उसे मालूम होता था कि इन पटाकों की आवाज से उसके दिल की गति ही रुक जायगी। इधर घर के लोग उसको इधर-उधर खोजते रहते थे। खुशी के समय अपने प्रिय पुत्र को कौन देखना नहीं चाहेगा। अभी रंग छोड़ने का दिन नहीं आया था। इसके आगमन को सोचकर उसे और भी परेशानी होती थी। अन्त में उसने सोचा कि अब तो मृत्यु नजदीक ही है अतएव अपने गुरु के पास ही जाकर मरना उचित है। संभव है वे बचा लें। इस विचार को लेकर वह मनोविज्ञानशाला की ओर काशी के लिये चला। रास्ते में वह सोचता जाता था कि पटाके की आवाज से इतनी परेशानी का कारण आखिर हो ही क्या सकता है। उसे ज्ञात था कि ऐसे रोगों का कारण प्रायः कामवासना के क्षेत्र में ही होता है। अतएव उसने अपने उन सभी काम अनुभवों को सोच डाला जिनके कापण उसे कभी आत्म-ग्लानि हुई थी। सोचते-सोचते उसे पता चला कि जब वह एक बार अपनी किशोरावस्था में अपनी भाभी के पास सटकर सोया हुआ था तो उसे कामवासना जाग्रत हो गई थी। भाभी भी उस समय कामोत्तेजित हो गई थी। इस बालक को किसी प्रकार के काम-कृत्य के पूर्व ही वीर्यपात हो गया। फिर उसे बड़ी आत्म-ग्लानि हुई। बालक की नैतिक बुद्धि प्रबल तो थी ही अब वह अपनी आत्मभर्त्सना करने लगा। इसके बाद उसने भाभी के पास सोना तो दूर रहा उससे बोलना तक छोड़ दिया था। उसे एकाएक ज्ञात हुआ कि पटाका जननेन्द्रिय का प्रतीक है और उसको छोड़ना वीर्यस्खलन का। वास्तव में होली के अवसर पर विवाह के समय लोग अनजाने पटाके और बन्दूक इसलिये ही छोड़ते हैं कि इनसे उनकी कामवासना की प्रतीक रूप से वृद्धि होती है।

साधारण लोगों के मन में इतना अन्तर्द्वन्द्व नहीं रहता कि कामक्रिया के प्रतीकों से भी उन्हें भय हो; परन्तु जिस व्यक्ति में वासना का दमन अत्यधिक होता है वे न केवल वासना के सीधे प्रकाशन से घबड़ाते हैं वरन् उनके प्रतीकों से भी उन्हें घबड़ाहट होती है। इसी अन्तर्द्वन्द्व के कारण बहुतसे आदर्शवान युवकों में मानसिक नपुंसकता भी आ जाती है। यदि रतिक्रिया के प्रथम अनुभव के बाद किसी व्यक्ति को आनन्द का अनुभव हुआ तो इस क्रिया के सभी प्रतीक उस व्यक्ति की प्रसन्नता बढ़ाते हैं और यदि इस क्रिया के बाद किसी व्यक्ति को आत्मग्लानि का अनुभव हुआ तो वह व्यक्ति कामवासना को तथा उसके प्रतीकों को शत्रु के रूप में देखने लगता है। ऐसा व्यक्ति एक ओर बड़ा ही आदर्शवादी बन जाता है और दूसरी ओर वह किसी

शारीरिक अथवा मानसिक रोग का शिकार हो जाता है। वासना के प्रतीकों से डरने लग जाना मानसिक रोग है।

जो उक्त नवयुवक को ऊपर बताई घटना और पटाके की आवाज का उससे सम्बन्ध ज्ञात हुआ तो उसका रोग एकाएक जाता रहा। फिर वह बड़े आनंद के साथ मनोविज्ञानशाला में केवल अपने पुराने अनुभव को कहने आया। वह यहाँ आकर, रोकर अपनी कृतज्ञता प्रगट करने लगा कि अपने गुरु के ध्यानमात्र से उसकी जान बच गई। वास्तव में जब वह घर से चला था तो उसकी मनोदशा विलक्षण ही थी और यहाँ आने पर दूसरी ही हो गई। उक्त घटना के स्मरण होने के पश्चात् बनारस में चलनेवाले बड़े-बड़े पटाकों की आवाज ने भी उसे कुछ भी परेशान नहीं किया। इस प्रकार दमित स्मृति के चेतना के स्तर पर आते ही रोग की समाप्ति हो जाती है।

एक दूसरा २१ वर्ष का नवयुवक नपुंसकता के रोग से परेशान होकर आज से छः महीना पहले हमारे पास आया। वह विवाहित था; परन्तु अपनी स्त्री के पास जाने से बहुत ही डरता था। वह जब कभी स्त्री के पास जाता तो उसे कामोत्तेजना ही न होती। इस व्यक्ति को बचपन में उसके माता-पिता ने बड़े कठोर नियन्त्रण में रखा था। वे कभी भी बालक को अकेले घर के बाहर जाने नहीं देते थे। जब यह किशोर अवस्था में आया तो वह अपने संगी-साथियों के साथ बाहर खेलने जाता था। परन्तु उसे पिता का बड़ा डर रहता था। एक बार उसे साथियों के साथ खेलते-खेलते देर हो गई। उसके पिता ने उसे उस दिन इतना पीटा कि अधमरा कर दिया। इस प्रकार उसकी नैतिक बुद्धि अपने ही कामों के प्रति बड़ी प्रबल हो गई। विशेष कर वह हँसी-मजाक तथा कामवासना सम्बन्धी बातों को बहुत बुरा समझने लगा।

जब इस व्यक्ति की उमर और अधिक हो गई तो उसके एक मित्र ने उसे हस्तमैथुन की आदत में डाल दिया। फिर उसी मित्र ने इसे स्नेहवस उसकी स्त्री के पास सोने के लिये कहा। उसने उसे १० बजे रात को अपने घर बुलाया। स्त्री को पहले से ही बता दिया गया था। वह मित्र के आदेशानुसार उस नववधू के पास लेटा। उस समय उसे कामोत्तेना इतनी प्रबल हुई कि बिना किसी प्रकार की क्रिया के ही उसका वीर्यपात हो गया। इसके परिणाम-स्वरूप उसे बड़ी ही आत्मग्लानि हुई। वह अपने इस अनैतिक आचरण के लिये अपने आपको बहुत ही कोसने लगा। फिर यह सारी घटना भुला दी गई। उसने अपने आपको कामवासना सम्बन्धी सभी बातों से बिलकुल दूर रखा। वह अपना विवाह भी नहीं करना चाहता था। परन्तु अपनी मरजी के प्रतिकूल

ही उठकर चला जाता और रात होने पर वापस आता। उसे मालूम होता था कि इन पटाकों की आवाज से उसके दिल की गति ही रुक जायगी। इधर घर के लोग उसको इधर-उधर खोजते रहते थे। खुशी के समय अपने प्रिय पुत्र को कौन देखना नहीं चाहेगा। अभी रंग छोड़ने का दिन नहीं आया था। इसके आगमन को सोचकर उसे और भी परेशानी होती थी। अन्त में उसने सोचा कि अब तो मृत्यु नजदीक ही है अतएव अपने गुरु के पास ही जाकर मरना उचित है। संभव है वे बचा लें। इस विचार को लेकर वह मनोविज्ञानशाला की ओर काशी के लिये चला। रास्ते में वह सोचता जाता था कि पटाके की आवाज से इतनी परेशानी का कारण आखिर हो ही क्या सकता है। उसे ज्ञात था कि ऐसे रोगों का कारण प्रायः कामवासना के क्षेत्र में ही होता है। अतएव उसने अपने उन सभी काम अनुभवों को सोच डाला जिनके कारण उसे कभी आत्म-ग्लानि हुई थी। सोचते-सोचते उसे पता चला कि जब वह एक बार अपनी किशोरावस्था में अपनी भाभी के पास सटकर सोया हुआ था तो उसे कामवासना जाग्रत हो गई थी। भाभी भी उस समय कामोत्तेजित हो गई थी। इस बालक को किसी प्रकार के काम-कृत्य के पूर्व ही वीर्यपात हो गया। फिर उसे बड़ी आत्म-ग्लानि हुई। बालक की नैतिक बुद्धि प्रबल तो थी ही अब वह अपनी आत्मभर्त्सना करने लगा। इसके बाद उसने भाभी के पास सोना तो दूर रहा उससे बोलना तक छोड़ दिया था। उसे एकाएक ज्ञात हुआ कि पटाका जननेन्द्रिय का प्रतीक है और उसको छोड़ना वीर्यस्खलन का। वास्तव में होली के अवसर पर विवाह के समय लोग अनजाने पटाके और बन्दूक इसलिये ही छोड़ते हैं कि इनसे उनकी कामवासना की प्रतीक रूप से वृद्धि होती है।

साधारण लोगों के मन में इतना अन्तर्द्वन्द्व नहीं रहता कि कामक्रिया के प्रतीकों से भी उन्हें भय हो; परन्तु जिस व्यक्ति में वासना का दमन अत्यधिक होता है वे न केवल वासना के सीधे प्रकाशन से घबड़ाते हैं वरन् उनके प्रतीकों से भी उन्हें घबड़ाहट होती है। इसी अन्तर्द्वन्द्व के कारण बहुतसे आदर्शवान युवकों में मानसिक नपुंसकता भी आ जाती है। यदि रतिक्रिया के प्रथम अनुभव के बाद किसी व्यक्ति को आनन्द का अनुभव हुआ तो इस क्रिया के सभी प्रतीक उस व्यक्ति की प्रसन्नता बढ़ाते हैं और यदि इस क्रिया के बाद किसी व्यक्ति को आत्मग्लानि का अनुभव हुआ तो वह व्यक्ति कामवासना को तथा उसके प्रतीकों को शत्रु के रूप में देखने लगता है। ऐसा व्यक्ति एक ओर बड़ा ही आदर्शवादी बन जाता है और दूसरी ओर वह किसी

शारीरिक अथवा मानसिक रोग का शिकार हो जाता है। वासना के प्रतीकों से डरने लग जाना मानसिक रोग है।

जो उक्त नवयुवक को ऊपर बताई घटना और पटाके की आवाज का उससे सम्बन्ध ज्ञात हुआ तो उसका रोग एकाएक जाता रहा। फिर वह बड़े आनंद के साथ मनोविज्ञानशाला में केवल अपने पुराने अनुभव को कहने आया। वह यहाँ आकर, रोकर अपनी कृतज्ञता प्रगट करने लगा कि अपने गुरु के ध्यानमात्र से उसकी जान बच गई। वास्तव में जब वह घर से चला था तो उसकी मनोदशा विलक्षण ही थी और यहाँ आने पर दूँसरी ही हो गई। उक्त घटना के स्मरण होने के पश्चात् बनारस में चलनेवाले बड़े-बड़े पटाकों की आवाज ने भी उसे कुछ भी परेशान नहीं किया। इस प्रकार दमित स्मृति के चेतना के स्तर पर आते ही रोग की समाप्ति हो जाती है।

एक दूँसरा २१ वर्ष का नवयुवक नपुंसकता के रोग से परेशान होकर आज से छः महीना पहले हमारे पास आया। वह विवाहित था; परन्तु अपनी स्त्री के पास जाने से बहुत ही डरता था। वह जब कभी स्त्री के पास जाता तो उसे कामोत्तेजना ही न होती। इस व्यक्ति को बचपन में उसके माता-पिता ने बड़े कठोर नियन्त्रण में रखा था। वे कभी भी बालक को अकेले घर के बाहर जाने नहीं देते थे। जब यह किशोर अवस्था में आया तो वह अपने संगी-साथियों के साथ बाहर खेलने जाता था। परन्तु उसे पिता का बड़ा डर रहता था। एक बार उसे साथियों के साथ खेलते-खेलते देर हो गई। उसके पिता ने उसे उस दिन इतना पीटा कि अधमरा कर दिया। इस प्रकार उसकी नैतिक बुद्धि अपने ही कामों के प्रति बड़ी प्रबल हो गई। विशेष कर वह हँसी-मजाक तथा कामवासना सम्बन्धी बातों को बहुत बुरा समझने लगा।

जब इस व्यक्ति की उमर और अधिक हो गई तो उसके एक मित्र ने उसे हस्तमैथुन की आदत में डाल दिया। फिर उसी मित्र ने इसे स्नेहवस उसकी स्त्री के पास सोने के लिये कहा। उसने उसे १० बजे रात को अपने घर बुलाया। स्त्री को पहले से ही बता दिया गया था। वह मित्र के आदेशानुसार उस नववधू के पास लेटा। उस समय उसे कामोत्तेना इतनी प्रबल हुई कि बिना किसी प्रकार की क्रिया के ही उसका वीर्यपात हो गया। इसके परिणाम-स्वरूप उसे बड़ी ही आत्मग्लानि हुई। वह अपने इस अनैतिक आचरण के लिये अपने आपको बहुत ही कोसने लगा। फिर यह सारी घटना भुला दी गई। उसने अपने आपको कामवासना सम्बन्धी सभी बातों से बिलकुल दूर रखा। वह अपना विवाह भी नहीं करना चाहता था। परन्तु अपनी मरजी के प्रतिकूल

उसके पिता ने उसका विवाह कर दिया। जब स्त्री घर में आई तो उसने देखा कि वह काम-क्रिया के सर्वथा अयोग्य है। इसके लिये उसे बड़ी आत्म-ग्लानि होती थी। उसने आत्म-हत्या करने की ठान ली। उसे स्वप्नदोष होते थे, परन्तु बिना स्वप्न को समझे ही उसने अपनी कई प्रकार की चिकित्सा कराई, परंतु इससे कोई लाभ न हुआ। वैद्यों ने तो बता दिया कि तुम्हारे पुराने काम-कृत्यों का परिणाम है। हस्तमैथुन से नपुंसकता आही जाती है। एक डाक्टर ने अवश्य उसे प्रोत्साहित किया और उसे बताया कि उसका रोग केवल मानसिक है। उसे किसी प्रकार की शारीरिक नपुंसकता नहीं है। जब उसके मन में बैठ गया कि उसका रोग शारीरिक न होकर मानसिक है तो वह मनोवैज्ञानिक उपचार की खोज करने लगा और इसी मनोस्थिति में वह हमारे पास आया।

काशी मनोविज्ञानशाला में आये रोगियों से पहले स्नेह का बर्ताव किया जाता है। उन्हें कुछ उसी प्रकार के रोग से मुक्ति पानेवाले व्यक्तियों की आत्म-स्वीकृति की गाथायें पढ़ने को दी जाती है। उन्हें अनेक प्रकार से प्रोत्साहित किया जाता है। फिर उन्हें अपनी उन बातों को स्मरण करने के लिये कहा जाता है, जिनमें रोग का कारण होने की संभावना उन्हें दिखाई देती है। ऐसी बातों को वे लिख डालते हैं अथवा वे उन्हें मुँह से ही कहते हैं। जब सीधे ऐसी घटनायें याद नहीं आती तो आनापानसति और मानसिक शैथिलीकरण का अभ्यास कराया जाता है, तथा स्वप्न लिखने के लिये कहा जाता है। यह करते करते वह भावात्मक घटना रोगी को याद आ जाती है, जो रोग का कारण होती है और इस घटना के स्मरण होते ही रोग नष्ट हो जाता है। इस युवक के सम्बन्ध में भी ऐसा ही हुआ। ज्योंही अपने मित्र की स्त्री के साथ होने-वाली घटना उसे याद आई कि उसकी नपुंसकता का अन्त हो गया। वास्तव में इस व्यक्ति को कामोत्तेजना से ही भय हो गया था। जब वह ऐसी स्थिति में आता था, जब उसे कामोत्तेजना हो सकती है, तभी उसे एक अकारण भय हो जाता था। यह भय आत्मग्लानि का प्रतीक था। यही भय रोगी को नपुंसक कर देता था। जब रोग का कारण मानसिक होता है तो शारीरिक उपचार से वह कम न होकर और भी बढ़ जाता है।

जीवन के उलझन

मानव जीवन उलझनों से भरा हुआ है। उसकी समस्यायें अनन्त हैं। मनुष्य की अबोध अवस्थाओं में ये उलझने अथवा समस्यायें दिखाई नहीं पड़ती हैं। परन्तु प्रकृति मनुष्य को अबोध नहीं रहने देती। वह अनेक प्रकार की टक्करें लगा कर मनुष्य का उसके जीवन की समस्याओं और उलझनों से परिचय कराती है।

मनुष्य की कुछ उलझने उसके व्यक्तिगत जीवन से संबन्ध रखती हैं, कुछ पारिवारिक होती हैं और कुछ सामाजिक। कितने हीं लोग दार्शनिक झंझटों में फँसे रहते हैं और कितने ही अपने स्वार्थ सम्बन्धी झंझटों में। मनुष्य जब अपनी एक उलझन को सुलझाने की चेष्टा करता है, तो दूसरी उलझनें उसके सामने आने लगती हैं। जब हम उलझनों का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार करते हैं तो हम उनकी जड़ मनुष्य के व्यक्तित्व में ही पाते हैं। उलझे हुए व्यक्तित्व का व्यक्ति जिस भी क्षेत्र में काम करेगा वह उस क्षेत्र में उलझनों को ही देखेगा। वास्तव में जितनी उलझनें पहले से उस क्षेत्र में रहती हैं उनसे अधिक वह उन उलजनों को सुलझाने के प्रयास से पैदा कर लेता है। जिस मनुष्य का मन जटिल मानसिक ग्रन्थियों से भरा है वह इन ग्रंथियों का आरोपण अपने कार्य-क्षेत्र में करता है। जो व्यक्ति अपने अन्तर मन में विभाजित है, जिसके भीतरी मन में देवासुर संग्राम सदा चलते रहते हैं, वह अपने पारिवारिक जीवन में ऐसी समस्यायें उत्पन्न कर लेता है जिन्हें सुलझाना उसके लिये अत्यन्त कठिन हो जाता है। यदि वह राजनीतिक नेता है तो राजनीतिक क्षेत्र में ऐसी उलझनें पैदा करता है जिन्हें वह शक्ति भर प्रयास करने पर भी सुलझा नहीं पाता। वास्तव में ये बाहरी उलझनें उसके भीतरी मन की उलझनों के आरोपण मात्र हैं।

हाल की बात है कि लेखक के पास एक ऐसा युवक आया जिसे अपने बड़े भाई, अपने माता-पिता तथा घर के सभी लोगों से द्वेष इस कारण हो गया था कि उसके मन में यह विचार आ गया था कि वे सभी उसके चरित्र पर संदेह करते हैं और उसे चरित्र हीन समझते हैं। उसके बड़े भाई ने एक बार उसके संबन्ध में उसकी माँ से कुछ ऐसी बातें कहीं, जिससे उसके चरित्र पर कुछ दोष लगता था। इन बातों को इस युवक ने बड़े भाई के अनजाने सुन ली थी। अब उसका निश्चय हो गया कि घर के सभी लोग उसे चरित्र हीन ही

मानते हैं। यह युवक बड़ा ही संयमी है और सब प्रकार की सुविधाएँ होते हुए भी बड़ा कठोर जीवन व्यतीत कर रहा है। उसकी अपनी भावना थी कि उसका जीवन बड़ा ही पवित्र है और उसके बड़े भाई ने उसके विरुद्ध बुरा प्रचार कर रक्खा है। उसने घर के सभी लोगों से बोलना-चालना बन्द कर दिया। उसका दिन-प्रति-दिन स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। इसके कारण उसके माता-पिता को बड़ी चिन्ता हुई। पिता भी लेखक के पास अपने पुत्र की मानसिक स्थिति सुधारने के लिए परामर्श लेने आए। वे बहुत परेशान थे।

लेखक ने देखा परिवार का प्रत्येक व्यक्ति बड़ी ही मानसिक जटिलता में है। प्रत्येक अपनी मानसिक ग्रन्थि को एक दूसरे पर आरोपित करता है। पिता वास्तव में अपनी ही मानसिक ग्रन्थि से परेशान था। उसके आन्तरिक मन में अपने ही प्रति आत्महीनता की भावना थी। इस भावना के कारण वह सोचने लगा कि उसका होनहार पुत्र उसका अनादर करता है। वास्तव में पिता को जितनी शिक्षा दी हुई है उससे कहीं अधिक पुत्र की हो चुकी है। पिता-पुत्र की हरेक बात को अवज्ञा के रूप में देखता था। इसके कारण उनका जीवन भार रूप हो रहा था। पिता अपने पुत्र के चरित्र के विषय में कोई भी शंका नहीं रखते थे। उनका कहना था कि उसकी माता भी किसी प्रकार की शंका उसके चरित्र के विषय में नहीं रखती है। उन्हें यदि कोई शिकायत है तो उसके बड़ों के प्रति व्यवहार के लिए।

इस युवक का मनोविश्लेषण द्वारा अध्ययन किया गया। किसी भी मानसिक रोगी को स्वास्थ्य प्रदान करने के लिए प्रथम अवस्था में उसके सभी मनो भावों के प्रति सहानुभूति दिखाई जाती है। उसकी वेदना-मुक्त-अनुभूतियों को सहृदयता के साथ सुना जाता है। इस प्रकार उसके दमित भावों का जब कुछ रेचन हो जाता है, तभी वह अपने आपको पहचानने की स्थिति में आता है। यदि किसी मानसिक रोगी की भावनाओं को पहले से ही निराधर बता दिया जाय तो वह चिकित्सक का ही विरोधी बन जाता है। जब यह युवक अपनी आत्मवेदना को सुना रहा था तो वह रो पड़ा। उसे बहुत कुछ समझा-बुझाकर आश्वासन दिया गया कि वह वास्तव में बड़ा ही पवित्र मन का व्यक्ति है और ईर्ष्या वस ही उसके बड़े भाई ने उसके विरुद्ध प्रचार कर दिया। इससे उसको बड़ी शान्ति मिली। उसका शारीरिक रोग कुछ कम होने लगा।

दो-तीन दिन के बाद उसने स्वप्न में देखा कि जिस युवती के प्रेम का लांछन उसके बड़े भाई ने उसपर लगाया था, वही युवती उसके स्वप्न में आई और वह उस युवती से अनेक प्रकार की प्रेम चेष्टाएँ कर रहा था। इस स्वप्न को